इस्लाम धर्म रक्षक हुसैन

आयतुल्लाहिलउज़्मा सैय्यिदुलउलमा सै० अली नक़ी नक़वी ताबा सराह
अनुवादकः मिर्ज़ा सज्जाद हुसैन

निःसंदेह, अल्लाही धर्म (इस्लाम) जिसको मनुष्यों तक पहुँचाने हेतु पैग़म्बर भेजे गए, धार्मिक पुस्तकें रची गयीं, धार्मिक आदेश लागू किये गये। जिसके कारण हज़रत नूह ने कठिनाइयाँ उठायीं, इब्राहीम ने कष्ट सहे, मूसा को विध्न बाधाओं का सामना करना पड़ा, ईसा ने अपने विरोधियों का सामना किया। वह अल्लाही धर्म (इस्लाम) जिसको मानव-जाति तक पहुँचाने में हज़रत मुहम्मद[स०] ने आपत्तियों को सहन किया, विपत्तियों का सामना किया। हृदय पर कटु वचनों एवं शरीर पर पत्थरों की चोटों का खाना पसंद किया, वह इस्लाम जिसकी रक्षा करने में हज़रत मुहम्मद के चचा हमज़ा काम आए, उबैदा ने अपने प्राणों की बाज़ी लगायी, हज़रत जाफ़र के हाथ काटे गए एवं मुहम्मद के भ्राता आजन्म युद्ध करते रहे।

वही इस्लाम धर्म चारों ओर दृष्टि उठाकर अपने सहायक की खोज कर रहा था एवं पुकार-पुकार कर कह रहा था कि कोई मेरी सहायता एवं रक्षा करने वाला है उस समय जब कि 60 हिजरी में दमिश्क़ के राज्य सिंघासन पर यज़ीद विराजमान हुआ एवं इमाम हुसैन से भी अपने को धार्मिक अधिष्ठाता स्वीकार करवाने का इच्छुक हुआ।

हुसैन इससे भली भांति परिचित थे कि मुझसे यज़ीद को धार्मिक अधिष्ठाता स्वीकार करवाने का प्रमुख ध्येय क्या है। यदि केवल अरब देश के एक निवासी एवम कुरैश वंश के एक सदस्य होने के नाते मुझे यज़ीद की ख़िलाफ़त स्वीकार करने को कहा जा रहा होता, तो इतने यत्न प्रयत्न की आवश्यकता न थी जबकि समस्त अरब और हेजाज़ के निवासी यज़ीद को अपना धार्मिक अधिष्ठाता (ख़लीफ़ा) स्वीकार कर चुके थे तो एक हुसैन ने यदि यज़ीद को ख़लीफ़ा न भी माना था तो जन-तन्त्र के सिद्धान्तानुसार भी यज़ीदी राज्य का कुछ न बिगड़ता था, अकेले इमाम हुसैन वह भी अल्लाह-भक्त, संसार त्यागी, शाँन्ति-प्रिय एवं एकान्त-प्रेमी।

हुसैन का कोई मित्र ही नहीं, शत्रु भी यह न कह सका कि हुसैन ने अपने मदीने के निवास-काल में कभी कोई भाषण शाम के राज्य जहाँ का शासक यज़ीद था उसके ख़िलाफ़ दिया हो, कभी वहाँ की जनता को बहकाने और तोड़ने के लिए पत्र-व्यवहार किया हो अथवा किसी अन्य प्रकार का यत्न यज़ीद के विरोध में किया हो, किसी भी साधन द्वारा शांतिपूर्ण साम्राज्य को अस्त-व्यस्त किया जाए तो फिर ऐसी दशा में केवल एक यज़ीद को ख़लीफ़ा न स्वीकार करना, यज़ीद को क्या हानि पहुँचा सकता था जबकि अरब में अनगिनत विशाल अधिवेशन यज़ीद को ख़लीफ़ा मनवाने के लिए हुए हों, कितने ही उच्च प्रकार के साधनों के योग से सब को यज़ीद के ख़लीफ़ा मानने पर बाध्य किया गया हो किन्तु सहस्त्रों व्यक्तियों से फिर भी यज़ीद को ख़लीफ़ा स्वीकार करने का यत्न न किया गया।

फिर बनी हाशिम के वंश में अब्दुल्लाह बिन जाफ़र भी तो थे। मुहम्मद बिन हनफ़िया भी तो थे। उमर इब्ने अली और बिने अली तथा हुसैन के दूसरे भाई तो थे। उनमें से किसी को यज़ीद की ख़िलाफ़त को मानने पर विवश क्यों न किया गया? बस केवल हुसैन ही वह थे जिनसे यज़ीद को ख़लीफ़ा स्वीकार करवाने के लिए भगीरथ प्रयास किया जा रहा था।

इससे सुस्पष्ट है कि हुसैन से यज़ीद को ख़लीफ़ा मनवाने की बात केवल हुसैन का अरब-निवासी अथवा बनी हाशिम के वंश का एक व्यक्ति होने के नाते न था बल्कि आप से यज़ीद को ख़लीफ़ा स्वीकार करवाने का कारण हुसैन की एक विशेष विशेषता थी कि हुसैन रसूल के वंश की इज़्ज़त व सम्मान के प्रतिनिधि अली तथा मुहम्मद के उत्तराधिकारी हैं। हुसैन का यज़ीद को ख़लीफ़ा स्वीकार कर लेने का अर्थ यह था कि अप्रत्यक्ष रूप से हज़रत मुहम्मद ने यज़ीद के कार्यों, कर्मों एवं आचरणों को उचित मान लिया एवं संसार इस अशुद्ध विचार को सत्य मान बैठता कि यज़ीद का राज्य उचित एवं सत्य था (ये ज्ञात होना चाहिए कि यज़ीद के आचरण एवं चरित्र इस्लाम के प्रतिकूल थे एवं वह कायर, भोग-विलासी, मदिरा-प्रेमी एवं कुकर्मी था) अतएव जब हुसैन से भी यज़ीद को ख़लीफ़ा मानने को कहा गया तो हुसैन के विचार इन गहराईयों तक भी पहुँच गए।

उन्होंने समझ लिया कि मेरा यज़ीद को ख़लीफ़ा स्वीकार कर लेने का अर्थ ये है कि अली ने भी ऐसा किया और मेरा ऐसा करने का आशय यह है कि हज़रत मुहम्मद ने भी यज़ीद को ख़लीफ़ा मान लिया एवं मेरा ऐसा करने का भाव यह है कि सत्य से असत्य के सामने, वास्तविकता ने अवास्तविकता के सामने, प्रकाश ने अंधकार के सामने एवं धर्म ने अधर्म के सामने शीश नवा दिया। हुसैन को ज्ञात था कि यज़ीद को ख़लीफ़ा स्वीकार न करने का क्या परिणाम होगा किन्तु उनको ऐसा प्रतीत हो रहा था कि इस्लाम धर्म की दृष्टि मेरे मुख की ओर है और वह ये देख रहा है कि मेरी रक्षा के कारण हुसैन किसी बलिदान अथवा त्याग पर तत्पर होते हैं या नहीं।

हुसैन परिचित थे कि यह वह धर्म है जो मेरे जन्मदाता एवं पालनहार अल्लाह ने मुझे अमानत स्वरूप दिया है यथाकारेण इसकी रक्षा करना मेरा धर्म है। ये धर्म मेरे नाना हज़रत मुहम्मद की आजन्म कठिनाईयों एवं कष्टों का परिणाम है अतएव मुहम्मद के पुत्र होने के नाते मुझे इस्लाम की रक्षा करना अनिवार्य है एवं इस धर्म की मौजूदगी मेरे पिता हज़रत अली की खड्ग का फ़ल है अतः अली के उत्तराधिकारी होने के कारण इसकी संरिक्षता मेरा कर्तव्य है।

निःसन्देह इस्लाम धर्म अनाथ था एवं उसकी सहायता करने वाला तथा उसके सिद्धान्तों का रक्षा-केन्द्र न इराक़ में था न हिजाज़ में न शाम में कोई शरण-स्थान था, प्रत्येक ओर से निराश होकर इस्लाम धर्म हुसैन की छाया में शरण ले रहा था एवं हुसैन ने यह निश्चय कर लिया था कि मैं प्राण दे दूँगा किन्तु इस धर्म की रक्षा करूँगा केवल प्राण ही नहीं प्राणों को तो रण-क्षेत्र में प्रत्येक योद्धा दे देता है बल्कि इससे भी मूल्यवान वस्तु अपने हृदय के टुकड़ों अपने प्राणों से प्यारे पुत्रों, भ्राताओं एवं अन्य सम्बन्धियों को भी धर्म पर निछावर कर दूँगा तथा इससे भी बढ़कर अपनी सम्बन्धी आदर्श महिलाओं का कारागार का दण्ड भोगी होना भी स्वीकार कर लूँगा।

हुसैन ने अपना अमूल्य बलिदान भी 61 हिजरी में मोहर्रम के मास में शुक्रवार के दिन एवं दसवीं तारीख़ कर्बला के मैदान में दिया। शहीदों के शव भूमि पर थे। हुसैन के शिविरों से अग्नि की ज्वालायें उठ रहीं थीं। हज़रत मुहम्मद की सम्बन्धित स्त्रियों को बंदी बनाने का सामान था तथा सत्य की जिन्हा पर ये शब्द थे "निःसन्देह हुसैन धर्म की शरण देने वाले हैं, एवं हुसैन धर्म रक्षक हैं"।

इस्लाम और इंसानी हुकूक़

क़ाएदे मिल्लत मौलाना सै० कल्बे जवाद नक़वी, जनरल सेक्रेट्री मजलिस उलमा-ए-हिन्द
अनुवादकः सैय्यद सुफ़यान अहमद नदवी

(26)

इस से पहले यह बात बताई जा चुकी है कि इस्लाम में जो सख़्त सज़ाएं हैं वह एक समाज को सही ढंग से चलाने के लिए बहुत ही ज़रूरी हैं, मगर इसके साथ-साथ यह हक़ीक़त भी है कि जिन जुर्मों के बारे में यह सख़्त सज़ाएं हैं उनको साबित करने के लिए भी वैसी ही सख़्त शर्तें रख दी गई हैं, जिसकी वजह से इन जुर्मों का साबित होना बहुत मुश्किल हो गया है। बात आगे बढ़ाने से पहले ज़रूरी है कि लोगों के लिए यह बात साफ़ कर दी जाए कि इस्लाम में सज़ाओं की तीन क़िस्में हैं (1) पहली क़िस्म का नाम हुदूद है। इसमें इस्लाम की तरफ़ से सज़ा तै है। जैसे गर्दन उड़ाना, पत्थर मार कर ख़त्म करना, सौ कोड़े लगाना, कोड़े लगाना और पत्थर मारकर ख़त्म करना, कोड़े लगाना और शहर के बाहर निकाल देना, 80 कोड़े लगाना, हाथ काटना (2) कुछ जुर्म ऐसे हैं जिनकी सज़ा तै नहीं है जिनको ताज़ीरात कहते हैं। शरई हाकिम के ऊपर है कि वह खुद सज़ा तै करे (3) सज़ा की तीसरी क़िस्म क़िसास है, यह वह सज़ा है कि जिसको अंजाम देने का हक़ खुद मज़लूम को दिया गया है।

पिछले मज़मून में कई क़िस्से मिसाल के लिए बयान किये गए। जब जुर्म करने वालों ने खुद आकर अपना जुर्म कुबूल किया और खुद से सज़ा चाही। आप लोगों ने ख़बरों में पढ़ा होगा या कभी सुना होगा कि किसी ने अपनी बीवी को गुस्से में आकर क़त्ल कर दिया और बाद में थाने में हाज़िर होकर अपना जुर्म कुबूल कर लिया। कभी यह भी सुना होगा कि किसी ने अपने मासूम बच्चों को नशे की हालत में या गुस्से से पागल होकर या ग़रीबी से मजबूर होकर क़त्ल कर दिया और जब नशा उतरा तो पछतावे की आग से मजबूर होकर अपने को पुलिस के हवाले कर दिया, लेकिन आप ने यह कभी नहीं सुना होगा किसी की इज़्ज़त लूट कर या चोरी करके किसी ने अदालत में आकर खुद इक़रार कर लिया हो। लेकिन इस्लामी तारीख़ में बहुत से ऐसे वाक़िआत मिलेंगे कि जब मुजरिमों ने अपने होशो हवास में रहते हुए जुर्म किया, मगर अल्लाह को राज़ी करने के लिए अपने को सज़ा के लिए खुद ही आगे कर दिया, क्योंकि इस्लाम में दुनिया से ज़्यादा आख़िरत की अहमियत है, इसलिए उन गुनाह कुबूल करने वालों ने बहुत ही अक़्लमंदी और होशियारी का सुबूत देते हुए दुनिया की वक़्ती तकलीफ़ और परेशानी को बर्दाश्त कर लिया ताकि आख़िरत की हमेशा की तकलीफ़ से बच जाएं, क्योंकि दुनिया की सख़्त से सख़्त तकलीफ़ पहले तो यह कि वक़्ती है और दूसरी हक़ीक़त यह है कि यहाँ की बड़ी से बड़ी तकलीफ़ जहन्नम की तकलीफ़ों के मुक़ाबले में कोई हैसियत नहीं रखती।

रसूल[स०] का ज़माना है, एक औरत रसूल की ख़िदमत में हाज़िर हुई और कुबूल किया कि उसने ज़िना